लोक-वाटिका

*

डॉ. गंगा प्रसाद बरसैंया
श्रीमती लक्ष्मी बरसैंया

लोक - वाटिका

लेखक
डॉ. गंगा प्रसाद बरसैंया
श्रीमती लक्ष्मी बरसैंया

© डॉ. गंगा प्रसाद बरसैंया

प्रथम संस्करण – 2005

मुद्रक :
जिला सहकारी संघ मुद्रणालय
छतरपुर (म.प्र.)

लोक - वाटिका

यह कृति भेंट है –

सर्जना की बेला में मन–प्रांगण में
निरन्तर किलकारियाँ भरने वाले
चीनू, मीनू, गरिमा, महिमा, अन्नू, आशू, हनी, गुंजन,
नानू, चीकू, जैसे अनगिनत बच्चों को
जिनके हाथों में भविष्य सुरक्षित है।

अनुक्रम

लोक–भूमि साहित्य की जन्म–भूमि है

1.	सौ सुनार की एक लोहार की	1
2.	लालच बुरी बलाय	5
3.	कामचोर मुरगा	8
4.	साहसी बकरी	10
5.	सात–पाँच की लकड़ी एक जने का बोझ	12
6.	लाला हरदौल का बलिदान	14
7.	धोबिन द्वारा सुहाग–दान	18
8.	मुँह देखी पंचायत	22
9.	मानवता की मिठास	27
10.	बोलता आत्मविश्वास	35
11.	कन्हैया बिन कौन हरै मोरी पीरा	40
12.	कैसे कै दरसन पाऊँ हो	45
13.	बुन्देली लोकगीतों में रामकथा	50

लोक भूमि साहित्य की जन्मभूमि है

साहित्य और लोकसाहित्य को अलग–अलग मानना, वृक्ष को जड़ से अलग करना है। लोक रचना की प्राणभूमि है। लोक में रस है, जीवन है, प्रेम और प्रेरणा है। यही जीवन रस जब लोककंठ से मुखरित होता है तो वह लोक गीत बन जाता है। वह गीत शब्द–स्वरों में तो ढ़लता है, पर यह जान पाना कठिन है कि किसने इन स्वरों को ढाला है, कहां ढाला है और किस प्रकार ढाला है। जंगल के उन्मुक्त वातावरण में विभिन्न वनस्पतियां उपजती और पनपती हैं। सब मिलकर जंगल बन जाती हैं। परंतु किसने और कब इन्हें पनपाया यह कह पाना संभव नहीं है। लगता है कि यह परम्परा युगों से निरंतर चली आ रही है। लोकमन और लोककंठ की विशेषता यह है कि नीले–आकाश तले स्वच्छन्द वातावरण में मनोभावों के स्वर उच्चारित करता है, शोक में रोता और हर्षोल्लास में गाता है। यह स्वर सभी का स्वर बन जाता है। लोकमन से उपजा यह स्वर–साहित्य लोककंठों में विराजता है, टिकता है। ग्रंथो में ग्रंथित होने की वह चिन्ता नहीं करता। किसने संग्रहित कर दिया इसका भी लोकचित्त को पता नहीं हो पाता। इसे ही लोक–साहित्य कहा जाता है। गद्य–पद्य दोनों में इसकी समान गति होती है। भाव और शब्दावली का अक्षय भंडार और स्त्रोत उसके पास है जो कभी सूखता नहीं। इसकी एक विशेषता यह है कि यह युग–परिवर्तन के साथ अपने स्वर–भावों को बराबर बदलता रहा है। युगों के स्वर उसके साथ सहस्त्राब्दियों से जुड़ते रहे हैं। यह स्वर–नियोजन कभी सुनियोजित ढंग से नहीं हुआ। यह कैसे हुआ, इसको कोई जान नहीं सकता। जुड़ने के बाद ज्ञात होता है कि यह भी जुड़ गया। वह सबका है, सबके लिए है। साहित्य इसी से प्रेरणा और प्राण प्राप्त करता है। लोकसाहित्य की कल्पनायें–भावनायें साहित्य के नये रूप के साथ व्यापक क्षेत्र तक पढ़े–लिखे लोगों तक पहुंचती हैं और लिखित ज्ञान व वांगमय का अंग बन जाती हैं। इसीलिए लोकसाहित्य और साहित्य को अलग–अलग मानना न्याय संगत नहीं है। दोनों परस्पर अभिन्न हैं। "गिरा अर्थ जल बीचि सम लखियत भिन्न अभिन्न।"

साहित्य लिखित होता है, सुनियोजित और सुविचारित ढंग से लिखा जाता है, व्याकरण और भाषा–शास्त्र के अनुसार शुद्ध और परिष्कृत होता है। उसमें पुनरावृत्ति नहीं होती जबकि लोकगीतों में पुनरावृत्ति आनन्द प्रदान करती है। साहित्य व्यक्ति विशेष के नाम से जाना–पहचाना जाता है। लोकसाहित्य में मनुष्यों के साथ ही पशु–पक्षियों, वनस्पतियों का भी पात्रों के रूप में पर्याप्त प्रयोग हुआ है जबकि साहित्य के पात्र समाज के विभिन्न वर्गों के मनुष्य होते हैं। लोक साहित्य भाव–भाषा की शुद्धता–अशुद्धता की चिन्ता नहीं करता। उसमें छंद–बंधन भी नहीं होता, पर राग, लय, संगीत अवश्य है।

एक उल्लेखनीय बात यह भी है कि लोक साहित्य में ऊँच–नीच, छोटे–बड़े के भाव के बिना उसकी सार्वजनीनता–सर्वव्यापी है। वहां राम और कृष्ण, राजा तथा प्रजा के घर समान रूप से पैदा होते हैं। जन्मोत्सव पर सभी महिलायें गाती हैं – "मोरे पैदा भये हैं नंदलाल।" विवाह के समय हर दूल्हा राम और दुलहिन सीता होती है, तभी तो सर्वत्र गाया जाता है – "दशरथ के लाल सिया न्याहन आये।" हरी दूब, नारियल सर्वत्र प्रतिष्ठित हैं। 'सोने का गँडुवा गंगा जल पानी' घर–घर मिलता है। देवी की किंवरियाँ सबके लिए खुली होती हैं और हर भक्त ध्वजा नारियल फूलों से पूजा करता है – *"कोऊ चढ़ावै मइया धजा नारियल कोऊ फूलन का हार रे। हो मइया तोरे दरस का।"* लोक साहित्य समानता, एकता, आत्मीयता, रागात्मकता और सार्वजनीनता का आधार है। ऐसी व्यापकता, आत्मीय रागात्मकता और एकता साहित्य में सर्वत्र नहीं मिलती। ग्रंथों में बंद साहित्य कई बार अप्रासंगिक हो जाता है। लोकसाहित्य में ऐसी बात नहीं है। वह सदाबहार है। जब साहित्य जड़, गतिहीन कमजोर और रसहीन हो जाता है तो उसे प्राण–रस पाने के लिए लोक और लोकसाहित्य के पास जाना पड़ता है। साहित्य के लिए लोक और लोकसाहित्य पुनर्नवा बूटी का कार्य करते हैं। लोक से ही साहित्य को जीवन और पुनर्जीवन मिलता है। साहित्य की फसल लोक की जमीन के रसायन पर पनपती–पकती है। यदि लोक नहीं तो साहित्य किसके लिए? उसका क्या मूल्य? लोक ही तो प्राणाधार है सभी सर्जनाओं–कलाओं का। लोक से सामग्री लेकर लोक को ही समर्पित हो जाती है। इस प्रकार अलगाव की बात सोचना सर्वथा निराधार है।

आज प्रायः कहा जाता है कि वर्तमान साहित्य जनता के लिए अबूझ और अनुपयोगी बन गया है। उसमें पाठक को रस, प्रेरणा, चेतना अथवा आनन्द की प्राप्ति नहीं होती जिसकी अपेक्षा साहित्य से की जाती है। फलतः

वह आम जन से दूर हो गया है। यह विडम्बना की बात है कि जो साहित्य आम जन का होने का दावा करता है उसमें आमजन को आत्मानुभूति नहीं होती, आत्मानन्द नहीं मिलता। इसका कारण है लोक से दूरी, अलगाव। अतिविशिष्ट बनने की प्रवृत्ति प्रबल होकर जब भी आम जन से दूर होगी, साहित्य इस विकृति का शिकार होगा। बहुत सारा प्राचीन साहित्य आज विलुप्त है क्योंकि इसमें लोक को अलग रखा गया। जो लोक से जुड़ा रहा वह कालजयी बना। लोकभूमि को यदि साहित्य की जन्मभूमि कहा जाये तो अनुचित नहीं होगा। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था – "आज साहित्य लोगों से कट गया है, इसीलिए उसमें ताजगी कम है। इसी ताजगी और जीवन की तलाश के लिए आपको बार–बार लोगों से और लोक साहित्य से जुड़ना होगा।... रूपक की भाषा में कहूँ तो लोक साहित्य ही हमारे साहित्य की गंगा है। जब–जब हमें मैल और प्रदूषण से मुक्ति पानी होगी या अपनी संकीर्णता से मुक्ति पाकर एक विराट प्रवाह से जुड़ने की इच्छा हममें जब–जब पैदा होगी, तब–तब इसी लोक गंगा में डुबकी लगानी पड़ेगी। दूसरा कोई रास्ता नहीं... अपनी आत्मा को शुद्ध करने और शक्ति पाने का।"

लोक साहित्य में छोटे–बड़े, ऊँच–नीच सभी को प्रबोधित प्रेरित और दिशादर्शन देने की अद्‌भुत क्षमता है जो संकेतों और प्रतीकों के माध्यम से बड़ी सहजता से व्यक्त होता है। संग्रह की सभी लोक कथायें जीवन को नया आलोक देती हैं, चाहे वह कामचोर मुरगा हो या साहसी बकरी अथवा मुँह देखी पंचायत या मानवता की मिठास। लोक साहित्य भक्ति, आस्था और मानवता से सम्प्रक्त होता है। प्रकृति का सौंदर्य और प्राकृतिक उपकरण उसकी अभिव्यक्ति के अंग और माध्यम बनते हैं। देवी–देवताओं को लेकर उनकी कल्पनायें अनूठी हैं जहां जन–मन अपने कल्याण के साथ सबके कल्याण की याचना और कामना करता है – "जैसे उनके दिन फिरे वैसे सबके फिरें, "सबका कल्याण हो उसके पीछे हमारा भी कल्याण हो', 'भगवान सबकी रक्षा करे', आदि वाक्य उदारता, सार्वजनीनता और विश्व बंधुता के परिचायक हैं। लोक साहित्य हमें सीख भी देता है और सचेत भी करता है। यह बच्चों के कोमल मनों पर ऐसे संस्कार डालता है, उन्हें निर्मल और उदार चरित्र के साथ जीना और मुसीबत के समय संघर्ष करना और मिलकर रहना सिखाता है। लोक साहित्य न कभी पुराना होता है न समाप्त होता है। उसकी धारा अजस्त्र और अनवरत है। हमें इसे आदर के साथ स्वीकारना और जीवन के साथ जोड़ना चाहिए। यह जीवन और समाज के लिए संजीवनी है।

समय–समय पर सभी बच्चों के आग्रह पर, कभी सम्पादकों की मांग पर और कभी मन की तरंगित मनोदशा में जो लोक कथायें, कहानियाँ या बालकोचित आलेख लिखे थे, जिनमें से कुछ कहावतों पर भी आधारित हैं। उनमें से जो सुरक्षित रहकर हाथ लगे उन्हें संग्रह में दे रहा हूँ। विश्वास है कि लोकसाहित्य के प्रेमी पाठक इससे संतुष्ट और प्रसन्न होंगे। इनके लेखन में श्रीमती लक्ष्मी बरसैंया का सहयोग बराबर रहा है – सामग्री जुटाने और कुछ कहानियों के स्वतंत्र रूप से लिखने में। कुछ उनके ही नाम से प्रकाशित भी हुई थीं। अतः संग्रह में वे बराबरी की हकदार हैं। कामचोर मुरगा वाली कहानी तो मध्यप्रदेश की प्राथमिक शालाओं की तीसरी कक्षा की पुस्तक में कई वर्षों तक पढ़ाई जाती रही है। इसी प्रकार कुछ अन्य कहानियाँ संग्रहों में ली गई हैं। 'बोलता आत्मविश्वास' सत्य घटना पर आधारित है। जो इस बात का बोध कराती है कि कर्मनिष्ठ और स्वाभिमानी व्यक्ति परमुखापेक्षी न होकर अपने बलबूते पर अपना मार्ग खोजता और शस्त करता है। यह बच्चों के लिए प्रेरक प्रसंग है। अधिकांश लोककथायें और आलेख धर्मयुग, बालभारती, मधुमती, चौमासा, साहित्य अमृत, वीणा, सद्भावना दर्पण, जैसी प्रतिष्ठित प्रत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके है। मैं उन सभी सम्पादकों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए लोक की सम्पदा को लोक को सादर समर्पित कर रहा हूँ।

गणतंत्र दिवस
26, जनवरी 2005

– डॉ. गंगा प्रसाद बरसैंया
सेवा निवृत्त प्राचार्य
12, एम.आई.जी., चौबे कॉलोनी,
छतरपुर (म.प्र.)
फोन 07682–241024

परिचय

नाम : गंगा प्रसाद गुप्त 'बरसैंया'

जन्मतिथि : ६ फरवरी १९३७

शिक्षा : एन.ए., पी.एच–डी.

सेवा : म.प्र. के शासकीय महाविद्यालयों में व्याख्याता, प्राध्यापक, प्राचार्य, स्नातकोत्तर प्राचार्य पद से ३१–१२–९६ को सेवानिवृत्त।

निवास : एम.आई.जी.–१२, चौबे कॉलोनी, छतरपुर (म.प्र.) ☎ : (०७६८२ २४१०२४)

पुस्तकें :

(१) हिन्दी साहित्य में निबन्ध और निबंधकार (शोध प्रबंध) (२) हिन्दी के प्रमुख एकांकी और एकांकीकार (३) छत्तीसगढ़ का साहित्य और उसके साहित्यकार (४) आधुनिक काव्य : संदर्भ और प्रकृति, (५) रस विलास, (६) वीर विलास, (७) सुदामा चरित, (८) चिन्तन–अनुचिन्तन, (९) बुन्देलखण्ड के अज्ञात रचनाकार (शोधग्रंथ) (१०) अरमान वर पाने का (व्यंग्य), (११) निंदक नियरे राखिये (व्यंग्य) (१२) अथ काटना कुत्ते का भइजा जी को (व्यंग्य) (१३) तुलसी के तेवर, (१४) कर्म और आराधना, (१५) रचना से रचना तक, (१६) सृजन–विमर्श, (१७) समवाय, (१८) नारी : एक अध्ययन (१९) मेरी जन्मभूमि : मेरा गाँव, (२०) रूपक और साक्षात्कार, (२१) लोक वाटिका, (२२) शब्दों के रंग : बदलते प्रसंग तथा अन्य

सम्मान–पुरस्कार :

(१) महामहिम उप राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल जी शर्मा द्वारा साहित्य श्री।
(२) अखिल भारतीय भाषा साहित्य सम्मेलन द्वारा "साहित्य श्री" तथा भारत भाषा भूषण से सम्मानित (३) नागरी प्रचारणी सभा, कानपुर द्वारा – 'साहित्य भारती', (४) तुलसी सम्मान व विद्रोही पुरस्कार, (५) ओरछा महोत्सव व केशव जयंती समारोह समिति द्वारा "मित्र मिश्र अलंकरण" एवं पुरस्कार, (६) लोक मंगल एवं लोक संस्कृति सेवा निधि ट्रस्ट उरई (उ.प्र.) द्वारा 'गौरी शंकर द्विवेदी शंकर' अलंकरण एवं पुरस्कार। (७) अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

संस्थाओं से सम्बद्ध :

(१) अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा के कला संकाय के पूर्व डीन, हिन्दी बोर्ड के अध्यक्ष व कार्य परिषद के सदस्य (२) पूर्व डायरेक्टर, महाकवि केशव अनुसंधान केन्द्र, ओरछा, म.प्र. (३) म.प्र., आंचलिक साहित्यकार परिषद के उपाध्यक्ष (४) बुन्देलखण्ड कला संस्कृति परिषद, छतरपुर के अध्यक्ष (५) अखिल भारतीय भाषा साहित्य सम्मेलन, छतरपुर के अध्यक्ष। आदि।